नाट्यम्

95–98

शूद्रक विशेषांक

प्रधान संपादक
राधावल्लभ त्रिपाठी

संपादक
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

प्रबन्ध संपादक
सञ्जय कुमार

संपादक मण्डल
नौनिहाल गौतम, रामहेत गौतम
शशिकुमार सिंह, किरण आर्या

प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग
डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) सागर (म.प्र.)

नाट्यम् **95-98, अक्टूबर 2020-सितम्बर 2021**
रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की पूर्वसमीक्षित त्रैमासिक शोधपत्रिका
महाकवि शूद्रक विशेषांक
ISSN : 2229-5550
UGC Care List Journal, S.N.70
नाट्य परिषद् **(पंजीकरण क्र. 100066)**
संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
दूरभाष-फैक्स (कार्यालय) 07582-264366 पिन-470 003

Natyam : A Quarterly Journal of theatre and aesthetics
published by Natya Parisad. Deptt. of Sanskrit,
Doctor Harisingh Gour University, Sagar,
Madhya Pradesh-Pin-470 003. India.
Phone-Fax (off.) : 07582-297149

सदस्यता शुल्क :
विशेषांक - 200/- रु.
प्रत्येक अंक - 100/- रु., वार्षिक - 400/- रु.
पांच वर्षीय सदस्यता व्यक्तिगत - 2500/- रु.
पांच वर्षीय सदस्यता (संस्थागत) - 5000/- रु.
इस अंक का मूल्य - 200/- रु.

यह शुल्क मनीआर्डर, चेक या नगद दिया जा सकता है जो नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिह गौर विश्वविद्यालय, सागर के नाम देय होगा।

पत्रव्यवहार :
प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003
e-mail : sanskritsagar1946@gmail.com
natyamsagar1982@gmail.com
07582297149 Mob : +919425656284
© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रण : अजय जैन, **अमन प्रकाशन** नमक मंडी,
कटरा, सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

नाट्यम् में प्रकाशित नाटकों के अनुवादों/रूपान्तरों या किसी भी अन्य सामग्री की किसी भी रूप में प्रस्तुति के लिए *नाट्य परिषद्* से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति अथवा विचारों से *नाट्य परिषद्*, संपादक या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

1. **महाकवि शूद्रक का पाण्डित्य** 7
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
2. **मृच्छकटिक का घटनाश्लेष और रंगमंच** 18
राधावल्लभ त्रिपाठी
3. **मृच्छकटिकम् : पुनर्विचार और परिवर्तन का दृष्टिवाही प्रकरण** 28
चेतना वेदी
4. **साहित्य और न्यायतंत्र** 36
बजरंग बिहारी तिवारी
5. **मृच्छकटिक में वर्णित समाज** 62
मैत्रेयीकुमारी
6. **मृच्छकटिक में गणिका समाज : शास्त्रीय प्रतिबिम्ब** 69
समीनाज खान
7. **मृच्छकटिक में स्त्री-जीवन** 81
तेजनाथ पौडैल
8. **मृच्छकटिक में लोक-संस्कृति** 90
सञ्जय कुमार
9. **मृच्छकटिक में सनातन धर्म-दर्शन** 100
सत्यप्रकाश दुबे
10. **मृच्छकटिक में धार्मिक प्रवृत्तियाँ** 106
हेमन्त शर्मा
11. **मृच्छकटिक में मूर्ति एवं वास्तुकला** 117
सुरेन्द्र कुमार यादव
12. **मृच्छ्कटिक में आयुर्वेदीय सुभाषित** 126
गोपाललाल मीना
13. **मृच्छकटिक में न्याय-व्यवस्था** 133
शशिकुमार सिंह
14. **मृच्छकटिक में ज्ञान के विविध आयाम** 144
एस. एस. गौतम

15. **मृच्छकटिक में नाटकीय तत्त्व** 153
रूबी
16. **मृच्छकटिक की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा** 160
जयप्रकाश नारायण
17. **मृच्छकटिक में संवाद-योजना** 170
गौरव सिंह
18. **मृच्छकटिक में प्राकृत-प्रयोग** 175
सन्दीप कुमार यादव
19. **'क' प्रत्ययप्रेमी कवि शूद्रक** 182
किरण आर्या
20. **मृच्छकटिक में राजनैतिक परिदृश्य** 187
शान्तिलाल साल्वी
21. **मृच्छकटिक में अलङ्कार** 192
रामहेत गौतम
22. **मृच्छकटिक का सूक्तिसौन्दर्य** 210
नौनिहाल गौतम
23. **मृच्छकटिक में मानवमूल्य** 215
राजेन्द्र प्रसाद
24. **मृच्छकटिक में विश्रान्त सूच्य कथांश** 222
ओमप्रकाश राजपाली
लेखक परिचय 231

11

मृच्छकटिक में मूर्ति एवं वास्तुकला

सुरेन्द्र कुमार यादव

मृच्छकटिकम् संस्कृत साहित्य की एक महान कृति है। इसके प्रणेता शूद्रक नाम के किसी शास्त्रज्ञ, तपस्वी, योगी आदि थे ऐसा उल्लेख इसकी प्रस्तावना में मिलता है।[1] यह ग्रन्थ इस परिप्रेक्ष्य में विलक्षण है कि इसमें कवि शूद्रक के द्वारा दैवी कल्पनाओं, राजदरबारों एवं महाकाव्यों की परंपरा को त्यागकर समाज के मध्यम वर्ग के लोगों को यथार्थ जगत के भूतल पर लाया गया है, जिसमें मानव-जीवन और समाज की विसंगतियों का सुन्दर प्रतिबिम्बन है। मृच्छकटिकम् दस अंकों का एक प्रकरण रूपक है, जिसमें दो मुख्य कथानकों यथा चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम और पालक व गोपालदारक आर्यक के राजनैतिक संघर्ष का वर्णन है। प्रथम कथानक भासरचित नाटक 'चारुदत्तं' पर आधारित है। जबकि दूसरे कथानक में वर्णित राजनीतिक क्रिया-कलाप कवि की अपनी कल्पित संपत्ति है। अनेक विद्वानों का मत है कि शूद्रककृत मृच्छकटिकम् रचना गुप्तकालीन है। इस ग्रन्थ में तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के विविध पहलुओं के साथ-साथ धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशा का चित्रण किया गया है। इस रूपक में उस युग की उन्नत मूर्तिकला एवं उज्जयिनी नगरी के अधिवासीय स्वरूप का विहंगम वर्णन मिलता है। चारुदत्त ने परोपकारार्थ विविध स्थापत्यों से उज्जयिनी नगरी को सुशोभित कर दिया था।[2] प्रस्तुत शोधपत्र में मृच्छकटिकम् में वर्णित मूर्तिशिल्प एवं वास्तुकला के आाधार पर तत्कालीन उज्जयिनी नगरी के वैभव एवं सांस्कृतिक स्वरूप का अवलोकन करना है।

मृच्छकटिकम् की कथावस्तु का केन्द्र उज्जयिनी नगरी है। समग्र नाटक में तत्कालीन उज्जयिनी नगर के मूर्ति, स्थापत्य एवं वास्तुकला का सम्यक् विवेचन

किया गया है। इसमें गृह, विशाल भवन, प्रासाद, प्रकोष्ठ, प्रतोलिका, मन्दिर, विहार, तालाब, कूप, यज्ञ स्तम्भों के साथ-साथ मूर्तियों का उद्धरण प्राप्त होता है।

मूर्तिकला : गुप्तकाल में मूर्तिकला की अभूतपूर्व प्रगति हुई। रूप एवं सौन्दर्य के आर्द्रा की प्राप्ति इस काल के मूर्तिकला का लक्ष्य था। इस काल में धातु, प्रस्तर, काष्ठ एवं मिट्‌टी की मूर्तियों का निर्माण किया गया। द्यूत में दस सुवर्ण मुद्राओं को देने से बचने के लिये संवाहक प्रतिमाविहीन मन्दिर में प्रवेशकर देवमूर्ति के सदृश जड़वत् खड़ा हो जाता है, उसे इस प्रकार से खड़ा देखकर द्यूतकर कहता है कि क्या यह काष्ठ की प्रतिमा है, जिसके प्रत्युत्तर में माथुर कहता है कि नहीं यह प्रस्तर की प्रतिमा है। इस काल में वैष्णव धर्म के प्रचलन के अनेक प्रमाण मिलते हैं। विष्णु के अवतारों का विवरण प्रसंगतः प्राप्त होता है। मृच्छकटिकम् के छठे अंक में विष्णु का नाम रक्षा करने वाले देवता के रूप में हुआ है।[3] इसी प्रकार नरसिंह, वामनरूपी विष्णु, परशुराम एवं बलराम का उल्लेख अनेक उद्धरणों में हुआ है। शकार बसन्तसेना से कहता है कि मुझे पुरुषश्रेष्ठ मनुष्य वासुदेव की कामना करनी चाहिये- 'अहं वरपुरुषमनुष्यो वासुदेवः कामयितव्यः।'[4] इन तथ्यों से विदित होता है कि तत्कालीन युग में वैष्णव धर्म लोकप्रिय था। गुप्तों का राजधर्म होने के कारण वैष्णव धर्म से संबंधित अनेक प्रतिमाओं का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। इसके साथ ही शिव, सूर्य, दुर्गा एवं स्कन्द की प्रतिमाएं भी निर्मित हुई। इस युग में देव प्रतिमाएं अत्यन्त विशाल बनायी जाती थी। स्थूलकाय बसन्तसेना की माता को देखकर विदूषक उन्हें महादेव की विशाल प्रतिमा के समान बतलाता है।[5] मृच्छकटिकम् के मंगलाचरण में पर्यंक प्रकार के विशेष आसन में ध्यानस्थ शिव की स्तुति की गयी है[6], जिससे पता चलता है कि उज्जयिनी शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र थी। विवेच्यकाल से संबंधित अनेक पुरास्थलों से विशाल देव प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं, जिनमें ऐरण की महाविष्णु एवं वराह प्रतिमा, सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा, वाराणसी की गोवर्धनधारी कृष्ण आदि की प्रतिमाएं उल्लेखनीय हैं। इस काल में धनी वर्ग के लोग अपने बच्चों को स्वर्ण धातु के खिलौने एवं निर्धन वर्ग के बच्चे मिट्‌टी के खिलौने प्रयोग में करते थे। चारुदत्त के पड़ोसी के पुत्र के पास स्वर्णनिर्मित खिलौने तथा रदनिका निर्धन होने के कारण चारुदत्त के पुत्र के लिये मिट्‌टी का खिलौना बनाती है।[7]

भवन : तत्कालीन समाज में पक्की ईटों, कच्ची ईटों एवं काष्ठ निर्मित भवन का उल्लेख मिलता है। शर्विलक के चौर्यकर्म का जो उल्लेख मिलता है उससे सामान्य भवनों के वास्तुकला की जानकारी मिलती है।[8] चारुदत्त के एक जीर्ण-शीर्ण बड़े भवन का वर्णन है, जो बगीचे युक्त हवादार एवं खुला हुआ था। अत्यधिक कलात्मक होते हुये भी यह भवन रखरखाव न होने के कारण ही खण्डहर हो गया है। चारुदत्त स्वयं अपने भवन की जीर्णता का उल्लेख करते हुए बसन्तसेना से कहता है कि वायु के वेग से संचालित वेदिका संचय के अन्तभाग वाला वितान, जीर्ण होने के कारण बन्धन स्तम्भ में नहीं ठहर रहा है। पुरातन होने से चित्रित भित्ति, चूना के लेप के डालने के कारण जल वृटि के अन्तःप्रवेश से सिक्त हो गयी है।[9] इस भवन की दीवारें ईंटों से निर्मित होने के कारण मजबूत एवं सुदृढ़ थी, जिसमें एक द्वार एवं पक्षद्वार था। इस काल के मकानों में बड़े-बड़े दरवाजे निर्मित किये जाते थे। उन दरवाजों में बड़ी-बड़ी किवाड़ियाँ तदनुरूप उनमें बड़ी-बड़ी अर्गला भी लगायी जाती थी। हवा के आगमन एवं निस्सरण के लिये खिड़कियाँ निर्मित होती थी। मदनिका एवं शर्विलक से वार्ता करते हुए वसन्तसेना खिड़की के झरोखे से देखती है।[10] विशिष्ट प्रकार के भवनों के मुख्यद्वार पर एक प्रतोलिका निर्मित होती थी। इसी प्रकार के एक प्रतोलिका पर बैठकर शकार ने फाँसी के लिये जाते हुए चारुदत्त एवं उसके पीछे चलते हुए विशाल जन समूह को देखा था। घरों से जल निकासी के लिए नालियाँ बनी होती थी। मृच्छकटिकम् से ज्ञात होता है कि इस काल के सम्पन्न लोगों के आवास चतुःशाला से युक्त थे।[11] यह आवास का भीतरी प्रांगण था, जिसमें गोपनीय कक्ष निर्मित होते थे।[12] कामदेवगृह का उल्लेख संभवतः इसी प्रकार के गोपीनय कक्ष के लिये किया गया है। यह प्रतीक्षाकक्ष या अतिथिकक्ष जैसा होता था। इस ग्रन्थ के चौथे अंक में मदनिका शर्विलक को कहती है कि तुम कामदेवगृह में क्षणिक प्रतीक्षा करो जब तक आर्य को तुम्हारे आगमन की सूचना देती हूँ।

इस काल के वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण बसन्तसेना के भवन से परिलक्षित होता है। उनका भवन आठ प्रकोष्ठों में विभाजित था। प्रथम प्रकोष्ठ में छोटे भवनों की श्रेणी थी। महल का द्वितीय प्रकोष्ठ अश्वशाला था। तीसरे प्रकोष्ठ में कुलीन एवं आभिजात्य लोगों के लिये आसन थे, जहाँ चौसर (जुआ) खेलने के

लिये अलंकृत चौकी थी। यहाँ वेश्याएं एवं विट अपने कार्य में सजग दिखलायी देते थे। चतुर्थ प्रकोष्ठ संगीतशाला थी, जहाँ विविध वाद्यों की ध्वनि गूँजती रहती थी। पंचम प्रकोष्ठ पाकशाला के रुप में था, जहाँ अनेकाधिक स्वादिष्ट व्यंजनों की सुगंध प्रसरित हो रही थी। षष्ठम प्रकोष्ठ शिल्पियों का था, जो हीरे-जवाहरात एवं मणि-माणिक्यों से सुशोभित हो रहा था।[13] यहाँ शिल्पकार विविध प्रकार के आभूषणों के निर्माण एवं रत्न विशेषों पर चर्चा कर रहे थे। समीपस्थ ही मदिरालय था, जिसमें चेट, चेटियाँ एवं अनन्य लोग मदिरापान कर रहे थे। सप्तम प्रकोष्ठ पक्षीशाला था। आठवां प्रकोष्ठ शयनकक्ष था, जिसकी स्वर्ण कपाट हीरकादि कीलों से युक्त थे। उपरोक्त विवरणों से विदित होता है कि मृच्छकटिकम् काल में भवन निर्माण कला उत्कृष्ट श्रेणी की थी।

राजप्रासाद : मृच्छकटिकम् नाटक के अंतिम अंक में उज्जयिनी के राजप्रासाद का विवरण मिलता है। यह विशाल भवन राजा के आवास के लिये था। प्रासाद के अग्रभाग पर चढ़कर राजकीय घोषणाएँ की जाती थी। शकार यह उद्‌घोषित करता है कि मैं, प्रासाद की नवीन अग्रभाग में चढ़कर अपने पराक्रम को देखता हूँ। इसी प्रासाद से चारुदत्त के मृत्युदण्ड की घोषणा की गयी थी। प्रासाद में सुरक्षा की दृष्टि से जाने वाले मार्ग को संकीर्ण बनाया जाता था। इसकी पुष्टि शूद्रक के प्रासाद के अटारी वाली गली के विवरण से पुष्ट हो जाता है। शूद्रक के समकालीन लेखकों एवं अभिलेखों में गुप्तकालीन राजप्रासाद का उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन मंदसोर अभिलेख में दसपुर नगर को दो नदियों के निकट बसाया गया था। यह नगर प्रासादों से सुसज्जित था, जिसकी पंक्तियों से नगर किसी माला के समान सुशोभित होती थी। नगरों में सुसज्जित भवन चित्रों से युक्त विमानमाला का दृश्य उपस्थित करते दिखाई गये हैं। नगर के गृहभवन अधिकोन्नत थे तथा उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि उनके शिखर पर श्वेत बादल के रूप में कैलाश पर्वत के समान मनोहर छटा प्रस्तुत करते हैं।[14] कालिदास एवं फाहियान ने भी गुप्तकालीन राजप्रासाद का आकर्षण विवरण दिया है।[15] शूद्रक ने अपने ग्रन्थ में राजप्रासाद के सन्निवेश का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया है, किन्तु प्रसंगवश उद्धरणों एवं समकालीन साहित्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उज्जयिनी के राजप्रासाद भव्य रहे होंगे।

दुर्ग : मृच्छकटिकम् के छठे अंक में उज्जयिनी के दुर्ग विन्यास के विषय में जानकारी

प्राप्त होती है। इस राज्य की सुरक्षा के लिये नगर को रक्षा प्राचीर से दुर्गीकरण किया गया था। इसके लिये प्राचीर शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका तात्पर्य नगर को चारों तरफ दीवालों से घेरना है। नगर के चारों दिशाओं में प्रतोलीद्वार बने थे जहाँ बाहरी व्यक्तियों का प्रवेश निषेध था। प्रवेश करने वालो की भली-भाँति जाँच की जाती थी। जब स्थावरक चेट वसन्तसेना के भ्रम में आर्यक को बैलगाड़ी पर बैठाकर चलता है तो उद्घोषणा की जाती है कि द्वारपालों अपने-अपने स्थानों (चौकियों) पर सतर्क हो जाओं। चन्दनक एवं वीरक उसकी जाँच करने के लिये सर्तक हो जाओं। चन्दनक एवं वीरक उसकी जाँच करने के लिये उद्यत हो जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि नगर की रक्षा के लिये दुर्ग और आस-पास रक्षण चौकियों की व्यवस्था की गयी थी।

न्याय भवन : मृच्छकटिकम् में तत्कालीन न्याय व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। न्याय मण्डप अथवा अधिकरण मण्डप उस भवन को कहा जाता था जहाँ न्यायिक कार्य होते थे।[16] न्याय भवन वृहदाकार होते थे, जिनके चतुर्दिक हरी घास होती थी। इस भू-भाग को दुर्वाचत्वर कहते थे। इस न्याय कक्ष में अभियोजन की सुनवाई से पूर्व ही तत्संबंधी लोग प्रतीक्षा करते थे।[17]

मन्दिर एवं बौद्ध विहार : मन्दिर स्थापत्य का मूल आधार धार्मिक भावना से ओतप्रोत रहा है। प्राचीन साहित्य में मंदिर के अनेक पर्यायवाची शब्द मिलते हैं, जैसे- देवालय, देवागार, देवगृह, देवतायतन, देवस्थान एवं देवकुल आदि। भारतीय धरणा के मतानुसार देवालय किसी देवता का निवास स्थान नहीं है, अपितु स्वयं देवता है। देवालय देवता का शरीर है और उसमें मन रूपी अमूर्त देवता ऐकान्तिक-चिन्तन और मनन के लिए विद्यमान होता है। उस अमूर्त परमात्मा को कलाकारों ने अनेक सौन्दर्यात्मक, कलात्मक एवं धार्मिक रूप देकर मूर्ति के आकार में, एक प्रतीक के रूप में गर्भगृह में स्थापित किया है। इस प्रकार देवालय का स्वरूप वही है जो मानव शरीर का है।[18] गुप्त अभिलेखों में मन्दिर को प्रासाद कहा गया है। तत्कालीन साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मन्दिर पक्की ईटों एवं प्रस्तर खण्ड़ों से निर्मित होते थे। विशाल आवासीय भवनों में देवायतन भी हुआ करते थे। वसन्तसेना के भवन में देवायतन का उल्लेख भी मिलता है, जो कामदेव के मन्दिर से संबंधित था।[19] द्वितीय अंक के प्रारम्भ में मदनिका माताजी का संदेश लेकर वसन्तसेना के पास जाती है और कहती है कि माताजी ने आपको स्नान कर

देवताओं की पूजा करने को कहा है। प्रत्युत्तर में वसन्तसेना ने माताजी को यह संदेश भेजवाया की आज स्नान न करने से वे ब्राह्मण ही पूजा कर लें। इससे प्रतीत होता है कि देवपूजा स्नान करने के पश्चात ही होता था। नवें अंक में चारुदत्त को मन्दिर निर्माण का श्रेय दिया गया है। शूद्रक ने इस युग के धार्मिक स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस समय मूर्तिपूजा प्रचलित थी। निश्चित रूप से ये देवमूर्तियाँ देवालयों में प्रतिष्ठित की जाती रही होंगी। द्वितीय अंक में जुआरी सभीक को एक देवमन्दिर में छिपने के लिये प्रवेश करते हुए दिखलाया गया है।[20] ग्रन्थ में एक प्रतिमा विहीन एक देवालय का उल्लेख मिलता है।

मृच्छकटिकम् में वैदिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म के अनुयायिओं का भी वर्णन मिलता है। धनिक वर्ग के भिक्षुओं ने विहारों एवं मठों का निर्माण करवाया। चारुदत्त ने स्वयं बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था। उसने उज्जयिनी नगरी को बौद्ध विहार, मन्दिर, उपवन, तालाब, कूप आदि से अलंकृत किया।[21] इस ग्रन्थ के आठवें अंक में भी विहार का उल्लेख प्राप्त होता है।[22] चारुदत्त ने भिक्षु की सन्यास में निष्ठा को देखकर उसे समस्त मठों का कुलपति नियुक्त कर दिया।[23] जिससे ज्ञात होता है कि विहारों में शिक्षा की भी व्यवस्था थी। उन्हें बौद्धमठ कहा जाता था।

तालाब, उपवन, कूप एवं अन्य वास्तु साक्ष्य : मृच्छकटिकम् में तत्कालीन समाज के समृद्ध लोगों के भवनों में उद्यानों के निर्माण का विवरण मिलता है। वसन्तसेना एवं चारुदत्त इसी प्रकार के एक उद्यान में विहार करते हैं। चारुदत्त के निवास स्थान में पुष्करण्डक नामक उद्यान था।[24] उद्यान की शोभा को द्विगुणित करने के लिये बावड़ी होती थी। इस काल में सड़के पक्की एवं कच्ची दोनों प्रकार की निर्मित थी।[25] मुख्य एवं उप सड़कों के किनारे नालियाँ थी। चौड़ी सड़कों को राजपथ कहा जाता था।[26] इनके किनारे सुरक्षार्थ रक्षा चौकियाँ बनायी गयी थी। इन राजमार्गों पर बाजारों, वातायन तोरणों से अलंकृत, समृद्धशाली नागरिकों के गगनचुम्बी भवन थे जो अपने कलश कंगूरों से इतने ऊँचे एवं आकर्षक थे कि उनका अभ्रलिहाग्रे नामक नाम सार्थक होता था। संभवतः इस काल में अलग-अलग व्यवसाय करने वालों की अलग-अलग बस्तियाँ थीं और उनके तथा बस्तियों के पास के चौराहों को उस वर्ग विशेष के नाम से जाना जाता था।[27] नगर में संगीतशाला, वेश्यालय, नाट्यशाला, यज्ञशाला एवं आश्रम आदि बनाये गये थे। मृतक संस्कार के लिये श्मशान भूमि की

अलग से व्यवस्था नगर के दक्षिण में किया गया था।[28] श्मशान भूमि में ही अपराधियों को दण्ड देने के लिये एक खुला 'वध स्थल' बनाया जाता था।[29]

निष्कर्ष : उपरोक्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिकम् काल में मूर्ति, स्थापत्य एवं वास्तुकला अपनी पराकाष्ठा पर थी। समाज के विभिन्न वर्गों के लोग अपनी सामर्थ्य के अनुरूप ही भवन निर्माण करवाते थे। भवनों में कई प्रकोष्ठ होते थे, जिनमें शयनकक्ष, रसोईघर, पूजाघर, रंगशाला आदि का उल्लेख मिलता है। लोग घरों की सफाई एवं सजावट करते थे। शूद्रक के विवरण से ज्ञात होता की इस काल में उज्जयिनी नगरी अत्यन्त समृद्धशाली थी। इसका बसाव वास्तुशास्त्र के नगर नियोजन के अनुरूप ही किया गया था। यह नगर विविध विहार, देवालय, प्रासाद, सरोवर एवं उपवन आदि से सुशोभित था। शूद्रक ने विशाल भवन के बहिर्द्वार, विभिन्न प्रकोष्ठ, संगीतशाला, सोपान, गृहफलक तथा वातायन आदि का मूर्तिमान स्वरूप जिस सफलता से वर्णित किया वह श्लाघनीय है।[30] बसन्तसेना के गृह विन्यास से तत्कालीन उज्जयिनी के उत्कृष्ट स्थापत्य वास्तु की जानकारी प्राप्त होती है। उसके उत्कृष्ट भवन के सौन्दर्य देखकर विदूषक का यह कहना कि सचमुच मैंने इस भव्य भवन के दर्शन कर त्रैलोक्य देखने का आनन्द ले लिया। एक गणिका का भवन जब इतना भव्य है तो उस पर धन लुटाने वाले धनिक वर्ग के भवन कितने उत्कृष्ट होंगे, यह सहज ही विचारणीय है। इस काल की मूर्तिकला भी उन्नत दशा में थी। मूर्तियों को देवालयों में प्रतिष्ठित किया जाता था। इन मूर्तियों के अध्ययन से तत्कालीन धार्मिक स्वरुप का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है।

सन्दर्भ -

1. त्रिपाठी, रमाशंकर, मृच्छकटिकम्, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1969, अंक 1/3-6
2. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 9, पृ. 620
   येन तावत् पुरस्थापन, विहारराम देवकुल,
   तड़ागकूपैयूपैरलङ्कृता नगरी उज्जयिनी।।
3. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 6, पृ. 27
   अभयं तव ददातु हरी विष्णुर्ब्रह्मा रविश्च चन्द्रश्च।
4. शास्त्री, श्रीनिवास, मृच्छकटिकम्, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1991 पृ. 61

5. शास्त्री, मृच्छकटिक, पृ. 243
6. त्रिपाठी,, मृच्छकटिक, अंक 1
पर्यंकग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो-
रन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य।
आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या
शंभ्भोर्वः: पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नःसमाधिः।।1।।
7. शास्त्री, मृच्छकटिकम् पृ. 239
8. शास्त्री, मृच्छकटिकम्, पृ. 118
पक्वेष्ट कानामाकर्षणम् आमेष्टकानां छेदनम् पिण्डमयानं।
सेचनम् काष्ठमयानां पाटनमिति तदत्र पक्वेष्टके तिकाकर्षणम्।।
9. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 5/ 50
स्तम्भेषु प्रचलितवेदि संचयान्तं शीर्णत्वात्कथमपि धार्यते वितानम्।
एषा स्फुटित सुधा द्रवानुलेपात्संक्लिन्ना सलिल भरेण चित्रभित्तिः।।
10. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, प्रथम अंक 5/50 पृ. 384
ग्वाक्षकेण दृष्ट्वा कथमेषा केनापि पुरुषकेण सह मन्त्रयन्त्र तिष्ठति।।
11. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 10, पृ. 620
प्रासाद कालाग्रप्रतोलिकायामधि रुहयात्मनः पराक्रमं पश्यामि।
12. शास्त्री, श्रीनिवास, पृ. 235
13. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 4, पृ. 178
14. गुप्त, परमेश्वरी लाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड 2, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2013 (षष्ट संस्करण), पृ. 102-103
जतादरा दशपुरं प्रथमं मनोभिरन्वागतास्ससुत-बन्धु-जनास्समेत्य।5।
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिमानि चान्या-न्याभान्ति दीर्ग्ध-बलभी निवेदिकानि।11।
प्रासाद-मालाभिरलंकृतानि धरां विदार्य्यैव समुत्थितानि।
विमान-माला-सदृशानि यत्र गृहाणि पूर्णेन्दु-करामलानि।।12।।
15. रघुवंश, 17.25
16. त्रिपाठी, मृच्छकटिक, अंक 9 अज्जो
17. शास्त्री, श्रीनिवास, पृ. 323

18. Bhattacharyya, Tarun, The Cannons of Indian Art, Calcutta, 1947, Page 224
19. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 10, पृ. 40
20. शास्त्री, श्रीनिवास, पृ. 73
21. शास्त्री, श्रीनिवास, पृ. 371
22. शास्त्री, श्रीनिवास, पृ. 331
23. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 10 पृ. 740
दृढोस्य निश्चयः! तत्पृथिव्यां सर्वविहारेषु कुलपतिरयं क्रियताम्।
24. मृच्छकटिक, अंक 6, पृ. 235, 241
25. शास्त्री, मृच्छकटिकम्, पृ. 185
26. शास्त्री, मृच्छकटिकम्, पृ. 23, 63, 65
27. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 2
28. शास्त्री, श्रीनिवास, पृ. 413
29. त्रिपाठी, मृच्छकटिकम्, अंक 10
30. राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, हिन्दी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1965, पृ. 193